मागसर शुक्ल १, शनिवार, दिनांक १४-१२-१९७४, श्लोक-२, प्रवचन-४

अरहन्तादिक को एकदेश सिद्धपना प्रगट हुआ है;.... अरिहन्त, आचार्य, उपाध्याय और साधु, उन्हें भी एकदेश सिद्धपना-वीतरागता प्रगट हुई है। **अतः सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार करने से उसमें पञ्च परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार हो जाता है। इस कारण शास्त्रकर्ता ने मङ्गलाचरण में प्रथम सिद्धभगवान को नमस्कार किया है। अब, उक्त प्रकार के सिद्धस्वरूप का तथा.... अब, उक्त प्रकार के सिद्धस्वरूप का तथा उसकी प्राप्ति के उपाय के उपदेशदाता इष्टदेवता विशेष 'सकलात्मकी' (अरहन्त भगवान की) स्तुति करते हुए कहते हैं—**

श्लोक - २

अथोक्तप्रकारसिद्धस्वरूपस्य तत्प्राप्त्युपायस्य चोपदेष्टारं सकलात्मानमिष्टदेवताविशेषं स्तोतुमाह -

जयन्ति यस्यावदतोऽपि भारती विभूतयस्तीर्थकृतोप्यनीहितुः।
शिवाय धात्रे सुगताय बिष्णवे जिनाय तस्मै सकलात्मने नमः ॥२॥

यस्य भगवतो जयन्ति सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते। काः ? भारती-विभूतयः भारत्याः वाण्याः विभूतयो बोधितसर्वात्म-हितत्वादिसम्पदः। कथं भूतस्यापि जयन्ति ? अवदतोऽपि ताल्वोष्ठ पुटव्यापारेण वचनमनुच्चारयतोऽपि।

उक्तं च -

यत्सर्वात्महितं न वर्णसहितं न स्पंदितोष्ठद्वयं,
नो वांछाकलितं न दोषमलिनं न श्वासरुद्धक्रमम्।
शान्तामर्षविषैः समं पशुगणैराकर्णितं कर्णिभिः,
तन्नः सर्वविदः प्रणष्टविपदः पायादपूर्वं वचः॥ १॥

अथवा भारती च विभूतयश्च छत्रत्रयादयः। पुनरपि कथम्भूतस्य ? तीर्थकृतोऽप्यनीहितुः ईहा वाञ्छा मोहनीय-कर्मकार्यं, भगवति च तत्कर्मणः प्रक्षयात्तस्याः

सद्भावानुपपत्तिरतोऽनीहितुरपि तत्करणेच्छारहितस्यापि, तीर्थकृतः संसारोत्तरणहेतुभूतत्वात्तीर्थमिव तीर्थमागमः तत्कृतवतः। किं नाम्ने तस्मै ? सकलात्मने शिवाय शिवं परमसौख्यं परमकल्याणं निर्वाणं चोच्यते तत्प्राप्ताय। धात्रे असिमषिकृष्यादिभिः सन्मार्गोपदेशकत्वेन च सकललोकाभ्युद्धारकाय। सुगताय शोभनं गतं ज्ञानं यस्यासौ सुगतः, सुष्ठु वा अपुनरावर्त्यं गतिं गतः सम्पूर्णं वा अनन्तचतुष्टयं गतः प्राप्तः सुगतस्तस्मै। विष्णवे केवलज्ञानेनाशेषवस्तुव्यापकाय। जिनाय अनेकभवगहनप्रापण-हेतून् कर्मारातीन् जयतीति जिनस्तस्मै। सकलात्मने सह कलया शरीरेण वर्तत इति सकलः सचासावात्मा च तस्मै नमः॥ २॥

अब, उक्त प्रकार के सिद्धस्वरूप का तथा उसकी प्राप्ति के उपाय के उपदेशदाता इष्टदेवता विशेष 'सकलात्मकी' (अरहन्त भगवान की) स्तुति करते हुए कहते हैं —

बिन अक्षर इच्छा वचन, सुखद जगत् विख्यात।
धारक ब्रह्मा विष्णु बुध, शिव जिन सो ही आप्त॥ २॥

अन्वयार्थ - (यस्य तीर्थकृतः) जिस तीर्थङ्कर की (अनीहितुः अपि) बिना इच्छा के, अर्थात् इच्छा के अभाव में भी एवं (अवदतः अपि) बिना बोले भी, अर्थात् तालु-ओष्ठ आदि द्वारा शब्दोच्चारण नहीं किये जाने पर भी, (भारती विभूतयः) दिव्यध्वनि, अर्थात् ओंकाररूप जिनवाणी की विभूति (जयन्ति) जयवन्त वर्तती है- सदैव जय को प्राप्त होती है, (तस्मै शिवाय) उस शिवस्वरूप परमकल्याणकारक या अक्षयसुखस्वरूप परमात्मा के लिए (धात्रे) ब्रह्मस्वरूप सन्मार्ग के उपदेश द्वारा, लोक के उद्धारक विधाता के लिए (सुगताय) सद्बुद्धि एवं सद्गति को प्राप्त परमात्मा के लिए (विष्णवे) अपने केवलज्ञान द्वारा समस्त चराचर पदार्थ में व्याप्त होनेवाले, विष्णुस्वरूप सर्वदर्शी सर्वज्ञ परमात्मा के लिए एवं (जिनाय) संसार परिभ्रमण के कारणभूत मोह-राग-द्वेष तथा इन्द्रिय के विषयों को जीतनेवाले वीतरागी जिनेन्द्र भगवान के लिए और (सकलात्मने) ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मों का अभाव करनेवाले अरहन्त परमात्मा के लिए (नमः) नमस्कार हो।

टीका - जिन भगवान की जयवन्त वर्तती है, अर्थात् सर्वोत्कृष्टरूप से वर्तती है। क्या (जयवन्त वर्तती है) ? भारती की विभूतियाँ। भारती की, अर्थात् वाणी की; और विभूतियाँ, अर्थात् सर्व आत्माओं के हित का उपदेश देना — इत्यादिरूप सम्पदाएँ (जयवन्त वर्तती हैं)।

कैसे होते हुए (उनकी वाणी की विभूतियाँ) जयवन्त वर्तती हैं ? नहीं बोलते होने पर भी, अर्थात् तालु-ओष्ठ के संपुटरूप (संयोगसम) व्यापार द्वारा वचनोच्चार किये बिना भी (उनकी वाणी प्रवर्तती है)।

तथा कहा है कि—यत्सर्वात्महितं.....

जो सर्व आत्माओं को हितरूप है, वर्णरहित निरक्षरी है; दोनों ओष्ठ के परिस्पन्दन-हलन-चलनरूप-व्यापार से रहित है; किसी दोष से मलिन नहीं है; उसके (उच्चारण में) श्वास का कम्पन नहीं होने से अक्रम (एक साथ) है और जिसे शान्त तथा क्रोधरूपी विष से रहित (मुनिगण) के साथ, पशुगण ने भी कर्ण द्वारा (अपनी भाषा में) सुनी है, वह दुःखविनाशक सर्वज्ञ की अपूर्व वाणी हमारी रक्षा करो।

अथवा 'भारती विभूतयः' का अर्थ 'भारती, अर्थात् वाणी और विभूतियाँ, अर्थात् तीन छत्रादि'—ऐसा भी होता है।

तथा कैसे भगवान की ? तीर्थ के कर्ता होने पर भी इच्छारहित की। इच्छा, अर्थात् वाँछा, जो मोहनीयकर्म का कार्य है, उस कर्म का भगवान को क्षय होने से, उनके उसका (वाँछा का) असद्भाव (अभाव) है; अतः वे इच्छारहित होने पर भी-वे करने की इच्छारहित होने पर भी 'तीर्थकृत' हैं, अर्थात् संसार से तारने के (पार करने के) कारणभूतपने के कारण, तीर्थ समान, अर्थात् तीर्थ / आगम, उसके करनेवाले हैं—उनकी वाणी जयवन्त वर्तती है।

कैसे नामवाले उन्हें (नमस्कार) ? सकलात्मा को, शिव को[१]। शिव, अर्थात् परमसुख, परमकल्याण और जो निर्वाण कहा जाता है, वह जिन्होंने प्राप्त किया—ऐसे को, 'धाता' को—असि-मसि-कृषि आदि द्वारा सन्मार्ग के उपदेशक होने के कारण, जो सकल लोक के अभ्युद्धारक (तारणहार) हैं, उनको, 'सुगत' को—श्रेष्ठ है, गत, अर्थात् ज्ञान जिनका अथवा जो भले प्रकार अपुनरावर्त्य गति को (मोक्ष को) प्राप्त हुए है, उनको, अथवा सम्पूर्ण या अनन्तचतुष्टय को जिन्होंने प्राप्त किया है—ऐसे सुगत को, 'विष्णु'[२] को—जो केवलज्ञान द्वारा अशेष (समस्त) वस्तुओं में

---

१. शिवं परमकल्याणं निर्वाणं शान्तमक्षयं।
प्राप्तं मुक्तिपदं येन स शिवः परिकीर्तितः॥ (श्री आप्तस्वरूपः)

२. विश्वं हि द्रव्यपर्यायं विश्वं त्रैलोक्यगोचरम्।
व्याप्तं ज्ञानत्विषा येन स विष्णुर्व्यापको जगत्॥

व्यापक हैं—ऐसे को, 'जिन'[१] को—अनेक भवरूपी अरण्य (वन) को प्राप्त कराने के कारणभूत कर्मशत्रुओं को जिन्होंने जीता है, उन जिन को—ऐसे सकलात्मा को—कल, अर्थात् शरीरसहित जो वर्तते हैं, वे सकल; और सकल, अर्थात् सशरीर आत्मा, वह 'सकलात्मा' उनको नमस्कार हो।

भावार्थ - जो तीर्थङ्कर हैं, शिव हैं, विधाता हैं, सुगत हैं, विष्णु हैं तथा समवसरणादि वैभवसहित हैं और भव्यजीवों को कल्याणरूप जिनकी दिव्यवाणी (दिव्यध्वनि) मुख से नहीं, किन्तु सर्वांग से इच्छा बिना ही खिरती है और जयवन्त वर्तती है, उन सशरीर शुद्धात्मा को, अर्थात् जीवनमुक्त अरहन्त परमात्मा को यहाँ नमस्कार किया है।

यह भी माङ्गलिक श्लोक है। इसमें ग्रन्थकार ने श्री अरहन्त परमात्मा और उनकी दिव्यध्वनि को नमस्कार किया है।

श्री अरहन्तदेव कैसे हैं ?

तालु, ओष्ठ आदि की क्रियारहित और इच्छारहित उनकी वाणी जयवन्त वर्तती है। वे तीर्थ के कर्ता हैं, अर्थात् जीवों को मोक्ष का मार्ग बतलानेवाले हैं-हितोपदेशी हैं; मोह के अभाव के कारण, उनके किसी भी प्रकार की इच्छा शेष नहीं रही, अर्थात् वे वीतरागी हैं और ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मों का नाश होने से, उनके अनन्त ज्ञानादि गुण प्रगट हुए हैं, अर्थात् वे 'सर्वज्ञ' हैं।

तथा वे शिव हैं, धाता हैं, सुगत हैं, विष्णु हैं, जिन हैं और सकलात्मा हैं—ये सब उनके गुणवाचक नाम हैं।

भगवान की वाणी कैसी है ?

वह दिव्यवाणी है, जो भगवान के सर्वांग से बिना इच्छा के छूटती है, सर्व प्राणियों की हितरूप और निरक्षरी है।

तथा भगवान की दिव्यध्वनि को देव, मनुष्य, तिर्यञ्चादि सर्व जीव अपनी-अपनी भाषा में अपने ज्ञान की योग्यतानुसार समझते हैं। उस निरक्षर ध्वनि को

---

१. रागद्वेषादयो येन जिताः कर्म-महाभटाः।
कालचक्रविनिर्मुक्तः स जिनः परिकीर्तितः ॥२१॥ (श्री आप्तस्वरूपः)

'ओंकारध्वनि' कहते हैं। श्रोताओं के कर्ण प्रदेश तक वह ध्वनि न पहुँचे, वहाँ तक वह अनक्षर ही है और जब तक श्रोताओं के कर्ण में प्राप्त होती है (पहुँचती है), तब अक्षररूप होती है। *(श्री गोम्मटसार-जीवकाण्ड, गाथा २२७ की टीका)*

'.....जैसे, सूर्य की ऐसी इच्छा नहीं है कि मैं मार्ग प्रकाशूँ किन्तु स्वाभाविक ही उसकी किरणें फैलती हैं, जिससे मार्ग का प्रकाशन होता है; उसी प्रकार श्री वीतराग केवली भगवान के ऐसी इच्छा नहीं कि हम मोक्षमार्ग को प्रकाशित करें, परन्तु स्वाभाविकरूप से ही अघातिकर्म के उदय से उनके शरीररूप पुद्गल, दिव्यध्वनिरूप परिणमते हैं, जिनसे मोक्षमार्ग का प्रकाशन सहज होता है।' *(मोक्षमार्गप्रकाशक, प्रथम अध्याय)*

भगवान की दिव्यध्वनि द्रव्यश्रुत वचनरूप है, वह सरस्वती की मूर्ति है, क्योंकि वचनों द्वारा अनन्त धर्मात्मक आत्मद्रव्य को वह परोक्ष बताती है। केवलज्ञान अनन्त धर्मसहित आत्मतत्त्व को प्रत्यक्ष देखता है; अतः वह भी सरस्वती की मूर्ति है। इस प्रकार सर्व पदार्थों के तत्त्व को बतलानेवाली ज्ञानरूप और वचनरूप अनेकान्तमयी सरस्वती की मूर्ति है। सरस्वती के वाणी, भारती, शारदा, वाग्देवी इत्यादिक बहुत नाम हैं॥२॥

(श्री समयसार, कलश २)

श्लोक-२ पर प्रवचन

जयन्ति यस्यावदतोऽपि भारती विभूतयस्तीर्थकृतोप्यनीहितुः।
शिवाय धात्रे सुगताय बिष्णवे जिनाय तस्मै सकलात्मने नमः॥२॥

अन्वयार्थ - जिस तीर्थङ्कर की बिना इच्छा के,.... भगवान अरिहन्त को इच्छा नहीं बोलने की। भगवान बोलते हैं, उन्हें इच्छा नहीं होती। **तालु-ओष्ठ आदि द्वारा शब्दोच्चारण नहीं किये जाने पर भी,....** आवाज होती है इस तालु को स्पर्श कर, ऐसा भगवान को नहीं है। आहाहा! **'तीर्थकृत' जो तीर्थ के करनेवाले हैं और जिनकी.... 'भारतीविभूतयः'** भारती अर्थात् **वाणी की (सर्व प्राणियों के हित उपदेशरूप) विभूति जयवन्त वर्तती है, उस शिव को....** ऐसे शिव को, हों! **विधाता ने-ब्रह्मा ने....** परन्तु इस ब्रह्मा को उसका अर्थ करेंगे। जगत के कर्ता ब्रह्मा और विधाता और शिव, वह नहीं। जिन्हें वीतरागता प्रगट हुई है। पूर्ण आनन्द की शान्ति समाधि प्रगट हुई है, उसे भाषा की

विभूतियाँ होती हैं। उस जीव को शिव कहते हैं, उस जीव को शिव—शंकर कहते हैं। उसे विधाता—ब्रह्मा कहते हैं। उसे **सुगत को,....** बौद्ध। **विष्णु को, जिन को... 'सकलात्मन' सशरीर शुद्धात्मा को (अरहन्त परमात्मा)....** की बात है। सकल आत्मा है न? सकल अर्थात् शरीरसहित। सकल-शरीरसहित अरिहन्तदेव को **सशरीर शुद्धात्मा को (अरहन्त परमात्मा को) नमस्कार हो।** परन्तु ऐसे को। दुनिया जो शिव शंकर और विधाता और बुद्ध को कहती है, वह नहीं। कितने ही इसमें यह लगा देते हैं कि देखो! यह सब शिव और शंकर सबको नमस्कार किया है।

टीका - जिन भगवान की जयवन्त वर्तती है, अर्थात् सर्वोत्कृष्टरूप से वर्तती है। क्या (जयवन्त वर्तती है)? भारती की विभूतियाँ। भारती की, अर्थात् वाणी की; और विभूतियाँ, अर्थात् सर्व आत्माओं के हित का उपदेश देना—इत्यादिरूप सम्पदाएँ.... यह समझनेयोग्य जीव है, वह सर्व जीवों को हितपनादिरूप सम्पदायें **(जयवन्त वर्तती हैं)।** आहाहा! यह वाणी जयवन्त वर्तती है, ऐसा कहते हैं। भगवान ऐसे हैं, परमात्मा पूर्णानन्द -स्वरूप, उनकी वाणी समझनेवाले प्राणी के लिये जयवन्त वर्तती है, कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : पुद्गल में भी जयवन्त?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह वाणी है न, वह निमित्त है न! उस वाणी का प्रवाह जयवन्त है। आहाहा!

जो स्वयं समझता है। ऐसा कहा न वहाँ? बोधित। विभूतियाँ अर्थात् बोधित सर्व जीवों को। समझनेवाले सर्व जीवों को हितपनेरूप वह वाणी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! निमित्त से कथन आवे, तब तो यह आवे न! ऐसे तो समझता है, वह आत्मा अपनी ज्ञानपर्याय, अपने ध्रुव पर्याय के आश्रय से समझता है। परन्तु बाह्य निमित्त.... अन्तरंग साधन तो वह है। आया था न सवेरे? बाह्य निमित्त भी एक साधन है। वह है, इतनी अस्ति। आहाहा!

मुमुक्षु : साधन कुछ काम करता होगा तब .... कुछ करे नहीं उसे साधन कहना?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ करता नहीं, उसे साधन कहते हैं। यही बात है न सूक्ष्म। अनेकान्त वाणी की विविधता।

सर्व आत्माओं के हित का उपदेश देना—इत्यादिरूप सम्पदाएँ (जयवन्त वर्तती हैं)। जीवों को हितपनेरूप सम्पदा-विभूति है। आहाहा! वाणी। वह जयवन्त वर्तती है। कथन शैली व्यवहार की ऐसी होती है। उसका अर्थ न समझे तो गड़बड़ उठे। यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहे, इसलिए जरा देखा था वह, जरा उसका धर्मलब्धि काल। सवेरे की शैली है न वह। उसे धर्म की उत्पत्ति का स्वकाल होता है। आहाहा! जीव को-समझनेवाले को और अन्तर में द्रव्यस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का धर्म, उसकी लब्धि का काल होता है। वह उसके काल में वह जन्मक्षण धर्म की उत्पत्ति का वह काल है। आहाहा! उसका अन्तरंग साधन तो द्रव्यस्वभाव है। इतना भी उस धर्म की लब्धिकाल हो तब। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है। सब जीवों का वह-वह धर्म या अधर्म या राग या अज्ञान, उसका उत्पत्ति का उसका काल है। आहाहा!

मुमुक्षु : जन्मक्षण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जन्मक्षण है। उसका अन्तरंग साधन तो आत्मा है। आहाहा! राग होता है, वह भी वहाँ आत्मा के आश्रय से होता है। वह कहीं पर के आश्रय से नहीं होता। यह आता है। आहाहा! और धर्म की दशा हो, वह भी स्व के आश्रय से, स्व के साधन से होती है। और वह उसका वह काल होता है। आहाहा! समझ में आया?

छहों द्रव्यों की जिस समय में पर्याय होने का वह उसका लब्धिकाल है। आहाहा! छहों द्रव्य, उनकी जिस क्षण में वर्तमान दशा उत्पन्न हो, वह उसका स्वकाल है। आहाहा! यहाँ धर्मलब्धिकाल। जिसे उस क्षण में धर्म की उत्पत्ति होनी है, वह क्षण उसका जन्म-उत्पत्ति काल है और उसका साधन अन्तरंग प्रभु है। आहाहा! तब बाहर की वाणी उसे हित उपदेश का निमित्त है, ऐसा उसे व्यवहार से आरोपित (साधन कहा जाता है)। आरोपित तो अन्दर को भी आरोपित कहा है। अन्तरंग साधन आरोपित है। धर्म काल की दशा में अन्तरंग साधन का आरोप है कि आत्मा से वह हुआ। अन्तर साधन से। आहाहा! समझ में आया? और बाह्य के निमित्त को आरोपित साधन कहने में आता है। इसमें झगड़े बहुत। इससे होता है, ऐसा नहीं। क्योंकि धर्मकाल स्वकाल अपना है, वह स्वयं से होता है। पर को-निमित्त को साधन कहा, उसका स्वकाल उसमें

है। उसका इसमें अभाव है। समझ में आया? तथापि उसे आरोपित बाह्य साधन कहने में आता है। आहाहा! शास्त्र के अर्थ करने में भी बड़ी गड़बड़ उठती है।

यहाँ कहते हैं कि उनकी वाणी वह हितोपदेश में बाहर का साधन है। अन्तर का साधन जिस समय करता है, तब उस समय बाह्य साधन को आरोपित कहने में आता है। यह साधन है, ऐसा आरोप करने में आता है। कहो, महेन्द्रभाई! ऐसी बातें बहुत सूक्ष्म।

कैसे होते हुए (उनकी वाणी की विभूतियाँ) जयवन्त वर्तती हैं ? है? इस ओर है। **कैसे होते हुए (उनकी वाणी की विभूतियाँ)....** आहाहा! ॐ ध्वनि खिरे। **नहीं बोलते होने पर भी,....** भगवान बोलते नहीं। आहाहा! बोलते हैं, यह तो जड़ की भाषा है। भगवान बोलते नहीं। आहाहा! **नहीं बोलते होने पर भी, अर्थात् तालु-ओष्ठ के संपुटरूप (संयोगसम) व्यापार द्वारा....** तालु और होठ का संयोग, सम्पुट अर्थात्। **व्यापार द्वारा वचनोच्चार किये बिना....** ऐसी भाषा के जहाँ वचन कहे जाते हैं, ऐसे वचनोच्चार किये बिना। यह पंचास्तिकाय की टीका में है। उसमें से लिया है। **भी (उनकी वाणी प्रवर्तती है)।**

तथा कहा है कि जो सर्व आत्माओं को हितरूप है,.... देखो! जो वाणी सर्व आत्माओं को हितरूप है। निमित्त से कथन है। हितरूप तो उसकी धर्मपर्याय, स्वभाव वह हितरूप है। आहाहा! **वर्णरहित निरक्षरी है;....** उस वाणी में वर्णात्मक अक्षर बोले जाते हैं, ऐसा नहीं। ॐ ध्वनि निरक्षरी होती है। होठ बन्द होते हैं। तालु कम्पित नहीं होता, तथापि निरक्षरी वाणी, अक्षरों का समुदाय जिसमें है, ऐसी नहीं। निरक्षरी ॐ ध्वनि खिरती है। आहाहा! **दोनों ओष्ठ के परिस्पन्दन-हलन-चलनरूप-व्यापार से रहित है;....** ऐसे जो यह होठ हिलते हैं, वैसे भगवान को होठ नहीं हिलते। आ, क, का क ऐसे यहाँ तो होठ हिलते हैं न? अन्दर कण्ठ हिले, क्या कहलाता है? पंच होठस्थ क्या? कण्ठ स्थानीय। कण्ठ स्थानीय, तालु स्थानीय, होठ स्थानीय आता है न? पढ़ाई में आता था यह। क, ख, ग, घ। क, ख, ग यह यहाँ से। त, थ यह तालु में से, प, फ, व यहाँ से। प, फ, ब, भ, भु, पा, भु, पा, भु, पा इसलिए यहाँ से होठ से। उन्हें कहीं कण्ठ का वह नहीं है। भु। भु, पा, भु, पा। ऐसा सीखा है न विद्यालय में? वह सब

इसकी शैली है। होठ में से बोला जाये वह पहले इसे सिखावे। फिर कण्ठ, तालु, ऐसे इसके बोल हैं। आहाहा!

कहते हैं कि **दोनों ओष्ठ के परिस्पन्दन रहित है;....** वीतराग की—सर्वज्ञ की वाणी... आहाहा! ध्वनि उठती है-आवाज, वह दो होठ के कम्पन बिना की वाणी है। आहाहा! होठ बन्द होते हैं, तथापि पूरे शरीर में से आवाज उठती है। सब बात अलग प्रकार की है, भाई! **वांछारहित है,....** इच्छा बिना वह वाणी निकलती है। इच्छा नहीं कि मैं बोलूँ और दुनिया को समझाऊँ। ऐसी भगवान को इच्छा नहीं है। वह तो वीतराग है, सर्वज्ञ है। आहाहा! वे कहते हैं न कितने ही? चला है न अभी (संवत्) २००६ के वर्ष में। केवली पहले समय में वर्गणा को ग्रहण करते हैं, दूसरे समय में भाषा निकलती है।

मुमुक्षु : शास्त्र में ऐसा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे, वह शास्त्र सच्चे नहीं। यह वहाँ बोला गया था पालीताणा। २००६ वर्ष। देखो! यह कहते हैं, ऐसा नहीं होता। वचनवर्गणा पहले समय में ग्रहण करे, दूसरे समय में बोले, यह भाषा निकले। अरे! भाई! आहाहा! ऐसा है ही नहीं। उन्हें वाणी की उत्पत्ति में होठ का हिलना और कम्पन तथा इच्छा, यह है ही नहीं। आहाहा! उन्हें वाणी के कारण से वाणी की पर्याय उस काल में खिरती है। वह उसका वैभव है। वह वाणी का वैभव है। आहाहा! चैतन्य का वैभव तो अन्दर में ज्ञान-दर्शन और आनन्द है।

वांछारहित है; किसी दोष से मलिन नहीं है;.... इस वाणी में कोई दोष और मलिनता है ही नहीं। निर्दोष वाणी। वाणी निर्दोष! देखो तो सही। निर्दोष परमात्मा के मुख से निकले, ऐसा कहा जाता है। पंचास्तिकाय में आया है न? मुख से निकलती है। लोग ऐसा समझाते हैं न, इस अपेक्षा से कहा है। पंचास्तिकाय में कहा है, मुख से निकले। मूल तो पूरे शरीर से (निकलती है)। आहाहा! पूर्व में भाषा पर्याप्ति बाँधी है, इसलिए निकलती है, ऐसा भी कहना वह व्यवहारनय की बात है। आहाहा! उस समय के भाषा के रजकण भाषारूप, शब्दरूप परिणमते हैं। उसमें वीतराग की इच्छा नहीं है और उस भाषा में सदोषता नहीं है। यहाँ दोष नहीं इच्छा का और वहाँ दोष नहीं, ऐसा कहते हैं। निर्दोष वीतराग की वाणी अन्दर से निकले। आहाहा! सर्व प्राणी को हितरूप।

उसके (उच्चारण में) श्वास का कम्पन नहीं होने से अक्रम (एक साथ).... आवाज आती है। श्वास रुंधे तो क्रम पड़े। वह रुंधता नहीं। भाषा भले क्रम से परन्तु वह रुंधता के कारण क्रम नहीं है। समझ में आया? श्वास रुंधे। ऐसी भाषा निकले तो श्वास रुंधता है, या नहीं? यहाँ तो। उन्हें यह नहीं है। आहाहा! **अक्रम (एक साथ) है....** ऐसे बाहर से क्रम होता है। परन्तु उस होठ का हिलना और श्वास का रुंधना नहीं, इस अपेक्षा से उन्हें एक साथ वाणी निकलती है।

जिसे शान्त तथा क्रोधरूपी विष से रहित (मुनिगण) के साथ, पशुगण ने भी कर्ण द्वारा (अपनी भाषा में) सुनी है,.... आहाहा! जिन्हें अन्दर में सर्वज्ञपना और पूर्ण दशा प्रगट हो गयी है। उनकी वाणी, वाणी उनकी निर्दोष है और शान्त है। आहाहा! और क्रोधरूपी जहर से रहित है। ऐसे मुनिगण के साथ सुननेवाले। मुनि हैं, साथ में पशु भी हैं। नाग और बाघ। दो-दो कोस, पाँच-पाँच कोस के लम्बे नाग होते हैं, बाघ होते हैं बड़े ऊँचे, वे सब भगवान की वाणी सुनते हैं। वाणी सुननेवाले वे पशुगण भी **कर्ण द्वारा (अपनी भाषा में) सुनी है, वह....** आहाहा! वे अपनी भाषा में उसे सुनते हैं। आहाहा! उन्हें जो समझने की भाषा है न, वैसी भाषा से समझते हैं। आहाहा! यहाँ तो ॐ ध्वनि निकले परन्तु वह उनकी भाषा में समझते हैं कि मुझे भगवान ऐसा कहते हैं। आहाहा! इस वाणी को समझने के लिये ही इसे कितने आग्रह छोड़ देना चाहिए। भगवान बोले तब निकले। अरे! बोले कौन? बापू! बोले वह दूसरा। भाषा की जड़ की अवस्था है। आहाहा!

कर्ण द्वारा (अपनी भाषा में) सुनी है, वह दुःखविनाशक सर्वज्ञ की अपूर्व वाणी.... भाषा देखो! वह दुःख विनाशक सर्वज्ञ की वाणी है। उनकी वाणी में तो दुःख का नाश और आनन्द की उत्पत्ति हो, ऐसी वह वाणी है। आहाहा! समझ में आया? निमित्तपने की शक्ति ऐसी है, कहते हैं। वह समझता है अपने उपादान से और उस काल में उसकी पर्याय की उत्पत्ति का काल है। उसमें वह समझता है और श्रद्धा करता है। आहाहा! समझ में आया?

अपूर्व वाणी हमारी रक्षा करो। कहते हैं। ऐसी जो वाणी दुःख का नाश करनेवाली.... उसका भाव बोलते हैं न अन्दर! राग और अज्ञान की नाश करनेवाली

और वीतरागता की उत्पत्ति करनेवाली। निमित्त से (कथन है)। आहाहा! ऐसी **अपूर्व वाणी हमारी रक्षा करो।** कहो, सन्त-मुनि भी ऐसा कहते हैं। भाषा व्यवहार से आवे तब क्या कहे? रक्षा वह वाणी करती है?

मुमुक्षु : रक्षा का निमित्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त है। निमित्त का अर्थ? वह रक्षा का करनेवाली दूसरी (भी कोई) वाणी है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

भाषा तो ऐसी है, देखो! **हमारी रक्षा करो।** है न? मुनि भी ऐसा कहते हैं। वाणी द्वारा ऐसा आवे उन्हें। आहाहा! बहुत कठिन। मार्ग ऐसा वीतराग का है (कि) उसे बहुत पहलुओं से अनेकान्तरूप से इसे समझना पड़ेगा। यहाँ तो कहते हैं कि वह सर्वज्ञ की अपूर्व वाणी हमारी रक्षा करो। वाणी हमारी रक्षा करो। कहो, पोपटभाई! नवरंगभाई! यह क्या और वापस? एक ओर आया था कि धर्म की उत्पत्ति का उसका अपना काल है, उस काल में धर्म उत्पन्न होता है—हितरूप दशा। वह पूर्व के अहित के परिणाम के व्यय से भी नहीं और ध्रुव से भी नहीं। प्रत्येक तीन पर्याय भिन्न-भिन्न के स्वभाव से वर्तती है। आहाहा! उसमें बाह्य का निमित्त इसे कहने में आता है। समझ में आया?

ऐसी दुःख विनाशक सर्वज्ञ की (वाणी है)। क्योंकि उनकी वाणी में वीतरागता तात्पर्य आता है। चाहे जो बात आवे परन्तु वीतरागता आती है। अर्थात् कि स्वभाव के सन्मुख हो तो तुझे निर्दोष दशा—वीतरागा प्रगट होगी। ऐसा वाणी में आता है। समझ में आया? आहाहा! उसमें सब विवाद उठे न। यह २५०० वर्ष का (चलता है तो) चारों ओर अभी पुस्तकें इतनी प्रकाशित होती हैं.... गड़बड़ घोटाला। मानो कि बस, सब प्राणियों का कल्याण कर दो भगवान। इसका अर्थ यह है, भाई! जब तुझे यह वाणी सुनने की योग्यता होती है, तब वह निमित्त होती है और तब उपादान तो तेरी जागृत दशा है, वह तुझे हितरूप और रक्षा करनेवाला है। समझ में आया? वाणी का काल और पर्याय का काल तो भिन्न है। आहाहा! ऐसा सब कहाँ समझना? व्यवहारवाले को तो यह सब सामने डालते हैं।

वाणी को हितरूप कहा, इसका अर्थ कि हितरूप तो दशा भगवान आत्मा अपने

ध्रुव स्वभाव के आश्रय से करता है और वह भी उस धर्म की दशा हितरूप का उत्पत्ति का स्वकाल ही उसका वह है। आहाहा! ओहोहो! इस समय हित करनेवाली अपनी दशा है। वीतराग परिणति स्वरूप के आश्रय से, शुद्ध चैतन्यस्वरूप के साधन द्वारा जो वीतरागदशा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र दशा (प्रगट हुई), वह हित करनेवाली है। वह जीव की रक्षा करनेवाली है। समझ में आया? क्योंकि वाणी में ऐसा आया था। चन्दुभाई! वाणी में ऐसा आया था कि तू तेरी चीज़ जो ध्रुव आनन्द का नाथ पूर्णानन्द प्रभु, उसे तू पर्याय में समीप में ला अथवा पर्याय वहाँ समीप में कर। आहाहा! ऐसा आया था, इसलिए उस वाणी को निमित्तरूप से रक्षा करो, ऐसा कहा गया है। व्यवहार है सही न? व्यवहार है सही, परन्तु उससे होता है, यह बात नहीं है। यह विवाद है न? व्यवहार नहीं, ऐसा नहीं। व्यवहारनय है तो उसका विषय तो है। समझ में आया? परन्तु इस व्यवहार से है, वह अस्ति इतनी है। परन्तु उससे यहाँ होता है, यह बड़ा अन्तर पड़ जाता है। समझ में आया? आहाहा! वह हमारी रक्षा करो।

यह भी आया नहीं मोक्षपाहुड़ में? देव किसे कहते हैं, भाई उसमें। देव देते हैं। धर्म दे, पुण्य दे, पैसा दे, मोक्षमार्ग दे, धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष—चारों भगवान देते हैं। ददाति इति देव। आहाहा! धर्म देनेवाला देव देवाधिदेव त्रिलोकनाथ देव। क्या दे देव? देव क्यों कहा? कि वे देते हैं। क्या देते हैं? इसे मोक्षमार्ग देते हैं, इसे शुभभाव देते हैं और फिर शुभभाव में से पुण्य बँधे तो यह लक्ष्मी भी वे भगवान देते हैं। ऐई! और उसमें से भोग होता है, वह भोग भी देते हैं। स्वरूपचन्दभाई!

मुमुक्षु : भगवान ने दिये तो भोगना चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निमित्त से (कहा है)। भगवान पूर्णानन्द प्रभु है, उनकी वाणी में ऐसा ही आता है और इससे वह निमित्तरूप ऐसे ही परमात्मा होते हैं, ऐसा बताने के लिये उन्हें देनेवाले भगवान हैं, (ऐसा कहा)। यहाँ एक ओर कहा १०१ गाथा में कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान की पर्याय का दाता भी आत्मा है, साधन स्वयं है और वह उसका काल है, इसलिए होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : एक तो दे उसमें साधन....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ साधन डाला वापस। यह स्पष्ट करके 'है' इतना बतलाया।

मुमुक्षु : व्यवहार सिद्ध किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार है। व्यवहार न हो तो दूसरी चीज़ ही न हो। परन्तु उस व्यवहार से यहाँ होता है, यह बड़ी भ्रमणा है। यह तो शान्ति से जिसे वास्तविक तत्त्व की समझ करनी हो, उसकी बात है। पक्ष रखकर और स्वयं ने कहा, उसे सिद्ध करने के लिये बात शास्त्र से खोजे, वह बात सिद्ध नहीं होती। समझ में आया?

अथवा 'भारती विभूतयः' का अर्थ 'भारती, अर्थात् वाणी और विभूतियाँ, अर्थात् तीन छत्रादि'—ऐसा भी होता है। भगवान को तीन छत्र होते हैं। होते हैं न! चौसठ चंवर ढारते हैं, वह सब विभूतियाँ बाहर की-पुण्य की है। आहाहा! **तथा कैसे भगवान की? तीर्थ के कर्ता होने पर भी....** आहाहा! यह साधु, आर्यिका, श्राविका और श्रावक चार हैं। अथवा साधु के भेद चार कहे हैं न? साधु, मुनि, यति, ऋषि ये चार भाग हैं। ये भी चार हैं। ऐसे **तीर्थ के कर्ता होने पर भी इच्छारहित की। इच्छा, अर्थात् वाँछा, जो मोहनीयकर्म का कार्य है,....** लो! यहाँ मोहनीय कर्म का कार्य है इच्छा। आहाहा! संक्षिप्त में समझाना हो तो (क्या करे?) इच्छा तो अपने में राग की दशा की उत्पत्ति का स्वकाल है, इसलिए इच्छा होती है। यहाँ तो होती है परन्तु उसमें निमित्तपना कौन? यह बतलाना है। आहाहा!

इतनी अधिक भी किसे पड़ी हो? ....भगवान से होता है। प्रभु आपने, प्रभु आपने। हे नाथ! सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु। लो! नहीं आता? लोगस्स में नहीं आता? हे सिद्ध भगवान! हमें सिद्धिपना दिखाओ। ऐसा कहा है उसमें।

मुमुक्षु : मुझे दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु' है। दो, ऐसा नहीं। 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु' मुझे दिखाओ। ऐसा कहते हुए मुझे केवलज्ञान होओ मेरे पुरुषार्थ से। ऐसी बात है। लोगस्स में आता है न? प्रेमचन्दभाई! '**एवं मए अभिथुआ, विहुयरयमला....**' सब शब्द बापू! यह तो सन्तों की वाणी मोक्षमार्ग की, बापू! उसका अर्थ समझने के लिये बहुत धीरज चाहिए, शान्ति चाहिए। हमने माना ऐसा उसमें से निकले तो सच्चा, ऐसा नहीं होता। समझ में आया?

कहते हैं। **जो मोहनीयकर्म का कार्य है,....** स्वभाव का कार्य नहीं, इतना समझाने के लिये राग और इच्छा, वह मोहनीय का कार्य है, ऐसा समझाते हैं। **उस कर्म का भगवान को क्षय होने से,....** देखा? वह कर्म का क्षय होने से **उनके उसका (वाँछा का) असद्भाव (अभाव) है;....** यहाँ कहते हैं कि इच्छा के अभाव का काल था, इसलिए इच्छा का अभाव हुआ है। आहाहा! मोहनीय कर्म के अभाव से राग का अभाव-इच्छा का अभाव हुआ है, यह निमित्त का-व्यवहार का कथन है। समझ में आया? ऐसा उपदेश और ऐसा यह सब ऐसा लगे कि यह क्या है? यह कोई दूसरे जगत की बात होगी? अपने जो मानते हैं और जानते हैं, उससे यह और दूसरे जगत की बात होगी? बापू! तेरे सत्य के जगत की बात है। सत्यरूपी जगत प्रभु आत्मा। आहाहा! उसकी पर्याय में इच्छा का अभाव हो, वह भी अपने काल में अपने कारण से होता है। कर्म का-मोह का अभाव हुआ, इसलिए इच्छा का अभाव हुआ, यह भी व्यवहार के कथन हैं। समझ में आया?

अतः वे इच्छारहित होने पर भी-वे करने की इच्छारहित होने पर भी 'तीर्थकृत' हैं, अर्थात् संसार से तारने के (पार करने के) कारणभूतपने के कारण,... देखो! संसार के (पार) उतारने के.... उदयभाव का नाश करने में, वह उदयभाव, वह संसार है, उसे पार करने में, अभाव करने में **कारणभूतपने के कारण,...** यह तीर्थ-तिरने का उपाय तो तीर्थ तो स्वयं ही है। स्वयं आत्मा ही तीर्थ है। आहाहा! क्योंकि तिरने के उपाय का करनेवाला यह भगवान स्वयं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, यह तीर्थरूप स्वरूप है। इसका कर्ता तो आत्मा है। यह दशा कहीं भगवान से हुई है, (ऐसा नहीं)। आहाहा! समझ में आया? ऐसा व्यवहार है सही, व्यवहार है सही बोलने में। असद्भूतव्यवहार से ऐसा कहने में आता है। आहाहा! एक बात में समझने के लिये कितने पक्ष इसे असत्य के छोड़ना पड़ेंगे। आहाहा!

संसार से तारने के (पार करने के) कारणभूतपने के.... यहाँ कहते हैं कि संसार का व्यय हो जीव में, उसके काल में, उसके काल में उसका कारण होता है। आहाहा! और मोक्ष की पर्याय की उत्पत्ति हो, वह संसार के व्यय के कारण से नहीं। वह अपनी ही मोक्षदशा का काल है तो उत्पन्न होती है। आहाहा! ऐसी बात लोगों को

एकान्त लगे, हों! प्रेमचन्दभाई! ऐसा लगे, लगे, हों! यह तो एकान्त है। बापू! एकान्त नहीं, यही अनेकान्त है। कहने में आया, इसलिए उससे हुआ ऐसा नहीं, इसका नाम अनेकान्त है। समझ में आया?

तीर्थ समान, अर्थात् तीर्थ / आगम, उसके करनेवाले हैं— तीर्थ को आगम भी कहा जाता है। समझ में आया? प्रवचन को-आगम को भी तीर्थ कहने में आता है। यह वाणी के करनेवाले **उनकी वाणी जयवन्त वर्तती है।** आहाहा! ऐसा कहकर वह सर्वज्ञ और वीतरागदशा ऐसे टिक रही है, जगत में है तो उसकी निमित्तरूप से वाणी भी है व्यवहार, ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। आहाहा!

कैसे नामवाले उन्हें (नमस्कार) ? कैसे हैं वे भगवान (जिन्हें) नमस्कार करते हैं वे? नमस्कार जिन्हें करते हैं, वे कैसे हैं? करनेवाले, नमस्कार करनेवाले नहीं। **सकलात्मा को,....** सकलात्मा अर्थात् वह शरीरसहित आत्मा है। आहाहा! अरिहन्त लेना है न? वाणीवाले लेना है न। यहाँ सिद्ध नहीं लेना है। पहले में सिद्ध को नमस्कार किया। ओहोहो! वे सकल—कल अर्थात् शरीर, स अर्थात् सहित। जो शरीर सहित आत्मा है। सिद्ध भगवान तो शरीररहित आत्मा हैं। उन्हें वाणी नहीं होती। इसलिए अरिहन्त भगवान शरीरसहित हैं।

जिन्हें दूसरे प्रकार से **शिव....** आप्त स्वरूप को। नीचे श्लोक है न?

शिवं परमकल्याणं निर्वाणं शान्तमक्षयं।
प्राप्तं मुक्तिपदं येन स शिवः परिकीर्तितः॥

इसे शिव कहते हैं। आहाहा! **शिव, अर्थात् परमसुख, परमकल्याण और जो निर्वाण कहा जाता है, वह जिन्होंने प्राप्त किया ऐसे को....** शिव इसे कहते हैं। नमोत्थुणं में आता है। किया है नमोत्थुणं? किया होगा। शिवमय मह.... नहीं आता? शिवमय अय.... लोग्गस है। अपने लोग्गस है दिगम्बर में। ऐसे सब शब्द हैं। आहाहा!

शिव, अर्थात् परमसुख,.... शंकर कहा न उन्हें? **परमसुख, परमकल्याण और जो निर्वाण कहा जाता है, वह जिन्होंने प्राप्त किया—ऐसे को....** यहाँ शिव कहते हैं। इन अरिहन्त को शिव कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? जिन्हें सर्व और वीतरागदशा

पूर्ण प्रगट हुई है, उस सुख को-कल्याण के देनेवाले अथवा कल्याणस्वरूप हैं, इसलिए उन्हें-अरिहन्त को शिव कहने में आता है। आहाहा! नमोत्थुणं में आता है वह शिवमय.... अर्थ किसे आते होंगे? हिम्मतभाई किया था या नहीं लोग्गस-बोग्गस?

मुमुक्षु : सामायिक की थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : सामायिक की थी, ऐसा कहते हैं। उसमें यह आता है। शिवमय महि.... शब्दों के भाव क्या है, वह जरा समझे तो इसे ख्याल आवे। ऐसे का ऐसा पहाड़ा बोल जाये, बोल जाये, वह तो भाषा है। आहाहा!

धाता को.... शिव को नमस्कार। ऐसे शिव को। इस अरिहन्तपद को शिवपद कहने में आता है। आहाहा! क्योंकि इस सुख को निर्वाण कहा जाता है, जो उन्होंने प्राप्त किया। पूर्ण आनन्द और पूर्ण मुक्ति जिन्होंने प्राप्त की है। अरिहन्त ने निर्वाण—केवलज्ञान प्राप्त किया है न? मोक्ष ही प्राप्त किया है। भावमोक्ष प्राप्त है। आहाहा! **'धाता'-असि-मसि-कृषि आदि द्वारा सन्मार्ग के उपदेशक होने के कारण, जो सकल लोक के अभ्युद्धारक (तारणहार) हैं, उनको,....** वे धाता। ऐसा। **असि-मसि-कृषि आदि द्वारा सन्मार्ग के उपदेशक....**

मुमुक्षु : खेती करना, वह सन्मार्ग हुआ न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब पाप है। और वह वस्तु है, ऐसा बतलानेवाले हैं। इसलिए घाता।

असि-तलवार, मसि-कलम। असि-तलवार, मसि-कलम, कृषि-खेती। इसका स्वरूप वे बतलाते हैं। समझ में आया? तलवारवाले जीव ऐसे होते हैं, मसि अर्थात् लिखनेवाले जीव बनिया यह अक्षर के लिखनेवाले ऐसे होते हैं। मसि का अर्थ यह है। और कृषि-खेती करनेवाले जीव ऐसे होते हैं, उसका स्वरूप बतलाते हैं, इसलिए उन्हें घाता कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : सन्मार्ग... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु है, ऐसा बताते हैं और उसका निषेध करके वस्तु का

स्वरूप तेरा दूसरा है, ऐसा बताते हैं। यह सन्मार्ग। असि-मसि और कृषि का जो धन्धा, वह संसार है, विकार है, दुःखरूप है। इस द्वारा उसका अभाव बताते हैं। आहाहा! समझ में आया? वह आया था न? ऋषभदेव भगवान ने असि-मसि और कृषि का उपदेश दिया। देखो! दे, परन्तु वह तो विकल्प उस प्रकार का था, वह वाणी उस प्रकार की निकली, उसके तो वे ज्ञाता-दृष्टा थे। समझ में आया? ऐसा कि वे बेचारे दुःखी प्राणी थे। कृषि बिना किस प्रकार अनाज पकाना, लिखे बिना किस प्रकार इसे याद रखना? असि बिना सम्हाल रखना। सिर पर न हो तो कौन सम्हाल रखेगा? इसके बिना वे दुःखी थे, इसलिए इन्होंने बताया। बताया था वह तो विकल्प था और वाणी थी। परन्तु उसका स्वरूप बताया कि ऐसा ऐसे हो वहाँ ऐसा होता है। और उसमें उसका तात्पर्य तो उसमें से वापस वीतरागता बतायी है। समझ में आया? उसे यहाँ सन्मार्ग कहा जाता है। असि-मसि और कृषि का कहना, वह मार्ग है? यह तो बहुत धीर होकर तत्त्व समझने की बातें हैं, भाई! आहाहा!

'धाता' को—असि-मसि-कृषि आदि द्वारा सन्मार्ग के उपदेशक होने के कारण, जो सकल लोक के अभ्युद्धारक (तारणहार) हैं,.... लो! तिरने का रास्ता बताया, इसलिए वे भगवान तारणहार, घाता, उसके कर्ता—ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

सुगत को.... सुगत बुद्ध को कहते हैं। यहाँ सुगत इन्हें कहते हैं। आहाहा! **'सुगत' को—श्रेष्ठ है, गत, अर्थात् ज्ञान जिनका....** सुगत। आहाहा! जिन्हें केवलज्ञान श्रेष्ठ है, उसे वे प्राप्त हुए हैं, इसलिए उन्हें सुगत कहते हैं। बुद्ध को सुगत कहते हैं, वह तो क्षणिकवादी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? **'सुगत' को—श्रेष्ठ है, गत, अर्थात् ज्ञान जिनका अथवा जो भले प्रकार अपुनरावर्त्य गति को (मोक्ष को) प्राप्त हुए है,....** सुगत। भलीभाँति गत अर्थात् मोक्षदशा की पर्याय को प्राप्त हुए हैं। अरिहन्त केवलज्ञान को प्राप्त हुए हैं, वह मोक्षदशा है। सर्वज्ञपद जो प्राप्त हुई वही मोक्षदशा है। उसे सुगत कहा जाता है। आहाहा! (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)